**ओ३म्**

**‘ऋषि दयानन्द के जीवन के अन्तिम प्रेरक शिक्षाप्रद क्षण’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द की मृत्यु जोधपुर में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए उनके विरोधियों के षडयन्त्र के अन्तर्गत उन्हें संखिया जैसे विषैले पदार्थ का सेवन कराने से अजमेर में दीपावली 30 अक्तूबर, 1883 मंगलवार सायं लगभग 6:00 बजे हुई थी। मृत्यु के दिन मृत्यु से आधे घण्टे पूर्व की उनकी जीवन की प्रमुख घटनाओं का विवरण हम उनके प्रमुख प्रथम जीवनीकार पं. लेखराम जी के शब्दों में प्रस्तुत कर रहे हैं।

**‘अन्तिम दृश्य तथा विदाई’** शीर्षक से पं. लेखराम जी ने लिखा है कि **‘साढ़े पांच बजे का समय आया तो हम लोगों से स्वामी जी ने कहा कि अब सब आर्यजनों को जो हमारे साथ और दूर-दूर देशों से आये हैं, बुला लो और हमारे पीछे खड़ा कर दो, कोई सम्मुख खड़ा न हो। बस आज्ञा मिलनी थी कि यही किया गया। जब सब लोग स्वामी जी के पास आ गये तब श्रीयुत ने कहा कि चारों ओर के द्वार खोल दो और ऊपर की छत के दो छोटे द्वार भी खुलवा दिये। उस समय पांडे रामलाल जी भी आ गये। फिर स्वामी जी ने पूछा कि कौन सा पक्ष, क्या तिथि और क्या वार है। किसी ने उत्तर दिया कि कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का आदि अमावस, मंगलवार है। यह सुनकर (स्वामी दयानन्द जी ने) कोठे की छत और दीवारों की ओर दृष्टि की, फिर प्रथम वेदमन्त्र पढ़े, तत्पश्चात संस्कृत में कुछ ईश्वर की उपासना की। फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का थोड़ा-सा कथन कर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे और गायत्री मन्त्र के पाठ के पश्चात् हर्ष और प्रफुल्लित चित्त सहित कुछ समय तक समाधियुक्त रह नयन खोल यों कहने लगे कि ‘हे दयामय, हे सर्वशक्मिान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, आहा ! तैने अच्छी लीला की।‘ बस इतना कह स्वामी जी महाराज ने जो सीधे लेट रहे थे, स्वयं करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोक एक साथ ही बाहर निकाल दिया। (‘भारतमित्र’ से)**

‘अहा’ शब्द पर टिप्पणी करते हुए पं. लेखराम कृत ऋषि जीवन की सामग्री व लेखों को व्यस्थित रुप देकर उसका सम्पादन करने वाले पं. आत्मा राम जी ने टिप्पणी करते हुए लिखा है कि **यह ‘‘अहा” शब्द उन्होंने ऐसा कहा था जैसे कि कोई व्यक्ति कई वर्षों से बिछड़े हुए अपने प्यारे मित्र को मिलने पर प्रसन्नता प्रकट करता है और उस समय की दशा उस की प्रसन्नता की दशा थी और यही कारण है कि उन की इस विचित्र प्रसन्नता की दशा ने महान् विद्वान् पंडित गुरुदत्त की ईश्वरसत्ता का अत्यन्त ही प्रबल प्रत्यक्ष प्रमाण बिन बोले दे दिया। विदित रहे कि उस समय पंडित गुरुदत्त जी एम.ए. चुपचाप खड़े हुए दत्तचित्त होकर उस दशा का अध्ययन कर रहे थे और योगसिद्धि का फल देख रहे थे।**

मृत्यु के दिन महाराज ने क्षौर कराया था। उनकी इच्छा स्नान करने की थी, परन्तु लोगों ने स्नान न करने दिया, तब उन्होंने भीगे कपड़े से सिर पोंछा। उस रोज महाराज ने यह भी कहा था कि जो इच्छा हो वही भोजन बनाओ। जब भोजन बन गया तो उसे एक थाल में सजाकर महाराज के सामने लाया गया। महाराज ने उसे एक दृष्टि से देखकर कहा कि ले जाओ, परन्तु लोगों ने आग्रह किया कि आप भी कुछ खाइए, इस पर उन्होंने चनों के पानी की एक चमची ली। (पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय रचित जीवनचरित)

मास्टर लक्ष्मण जी आर्योपदेशक रचित जीवन चरित में जीवनीकार ने यह भी लिखा है कि **‘(मृत्यु होने के पश्चात) कुछ लोग चाहते थे कि (स्वामी जी के शव को) चारपाई से उतारा जाये, परन्तु बहुसम्मति से ऐसा नहीं किया गया। स्वामी जी की आंखें प्राण त्यागते समय खुली रह गई थीं। लाला जीवनदास जी ने बन्द कीं, परन्तु पूरी बन्द न हो सकीं।’**

स्वामी जी के प्राण छोड़ने से पूर्व कुछ समय तक समाधियुक्त रहने का उल्लेख हुआ है। इसमें यह नहीं लिखा है कि स्वामी की यह समाधि की अवस्था बैठे हुए लगी थी या लेटे हुए। ऐसा प्रतीत होता है कि यह समाधि लेटे हुए ही लगी थी। इसका कारण स्वामी जी रूग्ण व दुर्बल होना है। स्वामी जी के एक अन्य जीवनीकार स्वामी सत्यानन्द (श्रीमद्दयानन्द प्रकाश के लेखक, प्रकाशन सन् 1919) ने मृत्यु के समय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ‘और चिरकाल तक सुवर्णमयी मूर्ति की भांति निश्चल रूप से समाधिस्थ बैठे रहे।’ हमें लगता है कि पूर्व जीवनीकारों द्वारा समाधिस्थ शब्द के प्रयोग को देखकर उन्होंने अनुमान किया कि समाधिस्थ अवस्था बैठी अवस्था में रही होगी। आर्यविद्वान इस पर अपने विचार प्रस्तुत कर सकते हैं। दीवान बहादुर हरबिलास शारदा जी ने भी ऋषि दयानन्द जी की जीवनी में लेटे हुए ही अपने प्राण छोड़ने का उल्लेख किया है।

स्वामी दयानन्द जी का जीवन आदर्श मनुष्य, महापुरुष व महात्मा का जीवन था। उन्होने अपने पुरुषार्थ से ऋषित्व प्राप्त किया और अपने अनुयायियों के ऋषित्व प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। एक ऋषि का जीवन कैसा होता है और ऋषि की मृत्यु किस प्रकार होती है, ऋषि दयानन्द का जीवनचरित उसका प्रमाणिक दस्तावेज हैं जिसका अध्ययन व मनन कर सभी अपने जीवन व मृत्यु का तदनुकूल वरण व अनुकरण कर सकते हैं। हम आशा करते हैं कि पूर्व अध्ययन किये हुए ऋषि भक्तों को इसे पढ़कर मृत्यु वरण के संस्कार प्राप्त होंगे। इसी के साथ यह चर्चा समाप्त करते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

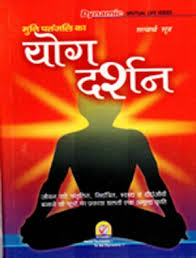
**पताः 196 चुक्खूवाला-2/देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘ईश्वर भक्ति व उपासना का यथार्थ स्वरुप ‘कस्मै देवाय हविषा विधेम’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने संस्कारविधि में 16 संस्कारों से पूर्व स्तुति-प्रार्थना-उपासना के आठ मन्त्रों का विधान किया है। इन आठ मन्त्रों में दूसरे, तीसरे, चौथे व पांचवे मन्त्रों के अन्त में **‘कस्मै देवाय हविषा विधेम’** पदों वा शब्दों का प्रयोग हुआ है। दूसरे मन्त्र में आये इन पदों का अर्थ करते हुए ऋषि कहते हैं कि **‘उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से विशेष भक्ति किया करें।’** तीसरे मन्त्र में ऋषि इन पदों का अर्थ करते हुए लिखा है कि **‘हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा-पालन करने में तत्पर रहें।’** चौथा मन्त्र है **‘यः प्राणतो निमिषतो’** जिसमें उक्त पदों का अर्थ करते हुए महर्षि ने लिखा है कि **‘हम लोग उस सुखस्वरूप सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा की उपासना अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके विषेष भक्ति करें।’** पांचवा मन्त्र **‘येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः’** है। इसमें **‘कस्मै देवाय हविषा विधेम’** पदों का अर्थ करते हुए महर्षि ने लिखा है कि **‘हम लोग उस सुखदायक कामना कने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।’**

इन चार मन्त्रों में एम समान चार पदों को ऋषि ने सुखस्वरूप ईश्वर की भक्ति व उपासना करने को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत कर अपने ऋषित्व का दर्शन कराया है। इन वाक्यों में ऋषि का ऋषित्व व वेदों पर उनका अधिकार दृष्टिगोचर होता है। ईश्वर की भक्ति वा उपासना अर्थात् ईश्वर प्रणिधान में **‘कस्मै देवाय हविषा विधेम’** पदों का विशेष महत्व है। आठवें मन्त्र के अन्तिम पदों **‘भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम’** में महर्षि कहते हैं कि **‘हम लोग ईश्वर की बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।’**

हमें लगता है कि यहां भक्ति वा उपासना के लिए ही **‘बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें’** का प्रयोग किया गया है। वेद मन्त्रों द्वारा उनकी भावना के अनुरुप बहुत प्रकार से ईश्वर की स्तुतिरूप नम्रता पूर्वक प्रशंसा ही उसकी भक्ति व उपासना है। वेदों का स्वाध्याय करते हुए वेद मन्त्रों के अर्थों पर विचार करते हुए उनकी भावना के अनुरुप ईश्वर की अनेकानेक प्रकार से स्तुतिरूप प्रशंसा करना ही सच्ची भक्ति व उपासना है। यही ईश्वर की पूजा भी है। यह अष्टांग योग में प्रत्याहार, धारणा व ध्यान व समाधि के अन्तर्गत की जाने वाली भक्ति व उपासना की क्रियायें व साधनायें हैं। अन्य प्रकार से, मूर्ति पूजा आदि द्वारा, की जाने वाली भक्ति व उपासना का वह महत्व नहीं है जो मन को विषय रहित कर वेद मन्त्रों का अर्थ सहित व उनकी भावनाओं के अनुरुप पाठ, चिन्तन-मनन व ध्यान आदि करना होता है। ऐसा करने से ही जीवात्मा हिंसा, असत्य, स्तेय, लोभ, राग व द्वेष आदि दोषों से निवृत्त होकर शुद्ध व पवित्र होता है। उसके गुण, कर्म व स्वभाव ईश्वर के अनुरूप व उसके जैसे बनते हैं। जीवात्मा की शुभ सामर्थ्य में वृद्धि होती है। आत्मा का बल बढ़ता है। मृत्यु का भय कम होता अथवा उससे मुक्त होता है। यह लाभ ईश्वर की भक्ति व उपासना से होते हैं।

यह कुछ शब्द हमने स्तुति-प्रार्थना-उपासना के उपर्युक्त पदों को ध्यान में रखकर लिखे हैं जिससे पाठक भी इन पर विचार कर सकें और हम भी उनसे उनके विचारों को जानकर लाभान्वित हो सकें।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**